Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 1, January-2019, ISSN 2230-7540

संस्कृत नाटिका का स्वरूप: विश्लेषणात्मक समीक्षा

Dr. Kumari Pramila*

Flat No. 606/F, Mundeshwari Enclave, Khajpura, Patna-14, Bihar

सार – *संस्कृत साहित्य में दो प्रकार की नाट्य विधाएँ मिलती है रूपक एवं उपरूपक। इन दोनों में मौलिक भेद यह है कि नाट्य भेद रूपक सर्वथा रसाश्रित होते हैं, और नृत्यभेद उपरूपक भावाश्रित। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी अठारह उपरूपकों को स्वीकार किया है। ये हैं - नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सटक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगादित, शिल्पक, विलासिका, प्रकरणिका, दुर्मल्लिका, हल्लीश एवं भणिका।*

उपरूपक के भेदों में नाटिका, नाटक तथा प्रकरण के शंकर से निर्मित होती है। इसमें प्रख्यात नायक एवं अंतःपुर की कन्या नायिका से संबंधित वस्तु होती है। यह स्त्रीबहुल, चतुरंग, कैशिकीवृत्ति युक्त, नृत्य, गीत, पाठ्य एवं रतियुक्त राज्य प्राप्ति रूप फलों वाली होती है। धनंजय के अनुसार इसमें नायक धीरललित प्रकृति का एवं श्रृंगार रस प्रधान होता है। देवी जयेष्ठा नायिका, प्रगल्भा एवं कनिष्ठा नायिका देवी के समान मुग्धा, अत्यंत मनोहर, दिव्य सौंदर्य से युक्त होती है। रामचंद्र के अनुसार इसमें अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, संधि, संध्यंग, पताकास्थानक एवं विष्कम्भक आदि नाटक के समान होते हैं।

----------X----------

धनंजय कृत दशरूपक इस तथ्य का साक्षी है कि उसकी दृष्टि में उपरूपकों का महत्व नहीं था। उसमें उपरूपकों का प्रसंग स्पष्ट रूप से कहीं नहीं उठाया गया है। दशरूपकों से ही संबंधित अठारह उपरूपक माने गए हैं। उपरूपकों का स्पष्ट उल्लेख प्रारंभिक नाट्याचार्यों ने कहीं नहीं किया है। उनकी दृष्टि में भी उपरूपकों का महत्व नहीं था। किंतु भावप्रकाशन और साहित्यदर्पण में उपरूपक का सांगोपांग वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि नृत्य पर आधारित रूपक के इन प्रभेदों का प्रचलन विश्वनाथ के काल तक आते आते पूर्ण रूप से हो चुका था, और यह नाट्यविधा की कोटि में परिगणित होने लगा था। अग्नि पुराण में त्रोटक, नाटिका, सट्टक इत्यादि का उल्लेख किया गया है, किंतु ना तो उन्हें उपरूपक की संज्ञा प्रदान की गई है, और ना ही उनकी व्याख्या की गई है।

शारदातनय ने नृत्यभेदात्मक सट्टक को नाटिका के भेद के रूप में माना है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी नाट्यदर्पणकार के अन्य रूपकों को स्वीकार कर लिया है। आज जो अठारह उपरूपक सर्वमान्य माने गए हैं उनके नाम एवं लक्षण आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में विस्तार के साथ मिलते हैं-

नाटिका त्रोटकम् गोष्ठी सट्टकम् नाट्यरासकम।

प्रस्थानोल्लाप्य काव्यानि प्रेंखणम् रासकम् तथा।।

संलापकं श्रीगादितं शिलापकं च विलासिका।

दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लिशो भाणकेति च।।

अष्टादश प्राहुरूप रूपकाणि मनीषिणः।

साहित्यदर्पण में नाटिका एवं प्रकरणिका को उपरूपक की कोटि में रखा गया है। साहित्यदर्पण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नृत्य पर आधारित इनके भेदों का विकास विश्वनाथ से पूर्व ही हो चुका था। उपरूपक के भेदों में नाटिका प्रधान है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में इसे नाटी कहा है। दूसरी ओर नाट्यदर्पणकार रामचंद्र - गुणचंद्र ने नाटिका को रूपक के भेदों में ही परिगणित कर दिया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि नाटिका की कथा स्त्री प्रकृति होने के कारण ही इसकी रचना के प्रति नाट्यकार उदासीन रहे। रूपक के भेदों की गणना करने के पश्चात् भरत ने नाटी शब्द का प्रयोग करते हुए इसके स्वरूप का संकेत दिया है। भरत मुनि ने प्रख्यात और अप्रख्यात अर्थात नाटिका और प्रकरण दोनों का परिचय नाटी के रूप में दिया है।

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये।

www.ignited.in

नाटिका की रचना के प्रति भरत ने अपना आग्रह दिखलाने के लिए उसका लक्षण अलग से किया है-

स्त्रिप्राया चतुरंका लालिताभिनयात्मिका सुविहितांगी।

बहुगीतनृत्यवाद्य रतिसम्भोगात्मिका चैव।

राजोपचारयुक्ता प्रसादन क्रोध दंभसंयुक्ता।

प्रकरणनाटकनाटी लक्षणमुक्तं समासेन।

भरत के लक्षण के अनुसार स्त्री पात्रों की बहुलता को तथा चार अंकों में इसके निर्माण को भेदक तत्व मानकर यदि नाटिका के अतिरिक्त प्रकरिणका नाम का एक पृथक भेद माना जाए तो उपरूपक के भेद एवं उपभेद अनगिनत हो जाएँगे। अतः नाटिका नाम से प्रख्यात एक ही संकीर्ण उपरूपक को मान्यता मिलनी चाहिए। ऐसा ही विचार धनंजय का भी है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि नाटिका के रूप में ही रचनाएँ उपलब्ध होती है। प्रकरिणका के नाम से पृथक नाट्यकृति का सर्वथा अभाव ही रहा है।

भरत के अनुसार नाटिका में स्त्री पात्रों की बहुलता होती है क्योंकि इसकी कथावस्तु राजा के अन्तःपुर से संबंध रहती है। कथा सूत्र का जाल चार अंकों तक ही व्याप्त रहता है। इसका अंगीरस श्रृंगार होने के कारण तदनुकुल ललित अभिनय, गीत, नृत्य आदि का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया जाता है। चूंकि नायक को अपनी प्रेयसी कनिष्ठा नायिका की प्राप्ति अनेक बाधाओं का सामना करने के पश्चात् होती है। अतः इसमें संभोग श्रृंगार की अवस्था तक पहुँचने से पहले भी विप्रलंभ श्रृंगार की संभावना होती है। राजोपचारयुक्त व्यवहार में क्रोध, ईर्ष्या, मान आदि कृतियों का वर्णन किया जाता है। अतः नाटिका में नायक तथा नायिकाओं के पक्षधर दूत, दूती, विदूषक तथा अन्तःपुर के अन्य कर्मचारियों का समावेश विविध पात्रों के रूप में स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। भरत के द्वारा नाटिका के संबंध में इस बात का संकेत मिलता है कि संकीर्ण उपरूपकों में विशेषतः नाटिका की ही गणना करनी चाहिए।

भरत ने नाटिका की परिभाषा लिखते समय समास शैली का अवलंबन किया है। किंतु दशरूपक के अनुसार नाटिका की कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है अर्थात् प्रकरण की तरह इसकी कथा कविकल्पित होती है। इसका नायक धीरललित तथा प्रख्यात वंश में उत्पन्न कोई राजा होता है। इसका प्रमुख रस श्रृंगार होता है। पात्रों में स्त्रियों की प्रमुखता रहती है। यह चार अंकों में समाप्त होती है। इसकी नायिकाएँ दो होती है। ज्येष्ठा नायिका देवी या महारानी भी कहलाती है । वह किसी राजा की पुत्री होती है तथा इसकी प्रकृति प्रगल्भ होती है। स्वभाव की गंभीरता इसकी विशेषता है। कनिष्ठा नायिका के साथ अपने पति के प्रेमव्यापार को लक्ष्य करने के कारण वह राजा से मान करती रहती है। अतः वह मानिनी भी कहलाती है।

कनिष्ठा नायिका मुग्धा प्रकृति की होती है। यह जयेष्ठा की तरह नृपवंशजा एवं अलौकिक सौंदर्य एवं गुणों से युक्त होती है। नायक के साथ कनिष्ठा नायिका का मिलन कठिनाई से होता है, क्योंकि ज्येष्ठा के प्रकोप का आतंक मिलन में बाधक बनता है। वह नायक के अंतःपुर में ही निवास करती है, इसीलिए वह नायक के दृष्टिपथ में आती रहती है। उसे देखकर नायक का अनुराग उसके प्रति बढ़ता जाता है। प्रेमांकुर की उत्पत्ति एकपक्षीय ना होकर उभयपक्षीय होती है। वह प्रेमांकुर क्रमशः पल्लवित एवं पुष्पित होता हुआ शनैः शनैः परिपक्व हो जाता है। यद्यपि नायक एवं कनिष्ठा नायिका महारानी के भय से संशकित रहते हैं तथापि उनकी अनुराग चेष्टाएँ बढ़ती ही जाती है। यदा-कदा सखियों के प्रयास से दोनों का मिलन प्रच्छन्न रूप से चलता रहता है। दोनों के इस मिलन व्यापार पर देवी का यद्यपि अंकुश रहता है तथापि यह प्रेम व्यापार कम होने के बजाय बढ़ता ही जाता है।

इस प्रकार धनंजय एवं धनिक ने भरत के द्वारा दी गई नाटिका की परिभाषा को विभिन्न दृष्टिकोण से विस्तृत किया है। लगभग सभी नाटिकाकारों ने इस परिभाषा का अनुसरण किया है यहाँ एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना अपेक्षित है कि धनंजय का समय दसवीं शताब्दी माना जाता है, जबकि रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटिका की रचना हर्ष ने सातवीं शताब्दी में ही की थी। इससे स्पष्ट होता है कि धनंजय ने हर्ष की दोनों नाटिकाओं को ध्यान में रखकर ही नाटिका की परिभाषा की होगी। धनंजय के पश्चात् अलंकारिक सागरनंदी का नाम आता है। उन्होंने अपने ग्रंथ नाटकलक्षणरत्नकोष में नाटिका का लक्षण दिया है-

सभेदा कैशिकी यत्र श्रृंगारद्वयमुंजवलम्।

चतुरंक सहासंच नाटकं नाटिकाम् विदुः।।

सागरनंदी ने ऐसे रूपक को नाटिका नाम से अभिहित किया है। जिसमें कैशिकी वृत्ति के नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट, नर्मगर्भ ये चार अंग हो। श्रृंगाररस के संयोग एवं विप्रलंभ दोनों भेदों का समावेश हो। चार अंको में इतिवृत्त का प्रसार हो। हास-परिहास से युक्त घटनाओं का समावेश हो। सागरनंदी के अनुसार इसकी कथावस्तु उत्पाद्य प्रकरण और नाटक के लक्षणों से मिश्रित होती है। कथा का मुख्य संबंध अंतःपुर में

www.ignited.in

विद्यमान संगीत कला में निपुण किसी कन्या से रहता है। पुनः नाटिका में स्त्रीपात्रों की बहुलता, चार अंको का समावेश रहता है। इसके अतिरिक्त प्रसाद, दंभ, क्रोध, मान आदि की विवृत्ति होती है। नायक एवं नायिकाओं के साथ दूती, महारानी की दासी आदि के सहयोग से घटनाओं का विस्तार होता है।

द्वादश शताब्दी में प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र ने नाटिका का लक्षण में भरत द्वारा निर्दिष्ट परिभाषा का अनुकरण किया है। हेमचंद्र ने भी नाटिका को मिश्र काव्य की श्रेणी में माना है। इसके इतिवृत्त को प्रकरण की तरह उत्पाद्य तथा नायक को धीरललित राजा मानते हुए श्रृंगार रस की प्रमुखता को स्वीकार किया है। मनोरंजन से युक्त होना, अनेक प्रकार के गीत, नृत्य, वाद्य से अभिनय को आकर्षक बनाना, नायक एवं नायिकाओं को मिलन का अवसर इत्यादि इसकी विशेषताएँ हैं। नाटिका के नायक का नृपवंशज होने के कारण राजकीय व्यवहारों की चर्चा या वर्णन करना जरूरी हो जाता है।

नाटिका के लक्षण का विवेचन द्वादश शताब्दी के नाट्यशास्त्रकार रामचंद्र - गुणचंद्र द्वारा लिखित नाट्यदर्पण में किया गया है। इसके अनुसार भी नाटिका में दो नायिकाएँ होती है। चार अंक, स्त्री पात्रों की अधिकता, श्रृंगार रस की प्रधानता, कैशिकी वृत्ति की प्रचुरता एवं इसके चारों अंगों का समावेश इत्यादि नाटिका की विशेषता है। नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होने के कारण गीत, नृत्य, वाद्य, श्रृंगार, हास्य आदि रसों की प्रचुरता होती है। श्रृंगार रस के अनुकूल इसका नायक धीरललित प्रकृति का होता है। सर्वत्र राजोचित व्यवहार का प्रदर्शन किया जाता है। स्त्री पात्रों में देवी, कन्या, दूती, सखी, चेटी आदि रहती है। नायक राजा ज्येष्ठा नायिका को अप्रसन्न रखकर कनिष्ठा नायिका की प्राप्ति के लिए ऐसा कोई कदम नहीं उठाता है जिससे ज्येष्ठा नायिका रुष्ट हो जाए। कनिष्ठा को प्राप्त करने के लिए जिस कोटि की व्यग्रता नायक में रहती है उतनी ही तीव्र व्यग्रता ज्येष्ठा रानी को प्रसन्न बनाए रखने के लिए भी होती है। नाटिका के अंत में ज्येष्ठा नायिका द्वारा कनिष्ठा नायिका के साथ नायक का मिलन कराया जाता है। नाटिका का फल स्त्रीलाभ एवं पूर्ण राज्य प्राप्ति होता है। त्रयोदश शताब्दी के शारदातनय के द्वारा दिया गया नाटिका का लक्षण रामचंद्र, गुणचंद्र, हेमचंद्र, सागरनंदी की परिभाषा से बहुत समानता रखती है। चतुर्दश शताब्दी के सिंगभूपाल ने रसार्णवसुधाकर में नाटिका के बारे में बताया है कि नाटक एवं प्रकरणिका नाटक एवं प्रकरण के तत्व को ही अपनाकर अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं, इसलिए इन्हें पृथक रूपक भेद मानने की आवश्यकता नहीं है। नाटिका का इतिवृत्त प्रकरण की प्रकृति का तथा नायक का इतिवृत्त नाटक की प्रकृति का होता है। नाटिका को नाटक एवं प्रकरण दोनों का भेद मानना उचित है, क्योंकि राजा के वृत्त को नाटक से और बुद्धि कल्पित वस्तु को प्रकरण से ग्रहण करती है।

अष्टादश शताब्दी के आलंकारिक विश्वनाथ ने उपरूपक के अठारह भेदों में पहला भेद नाटिका को ही माना है। इसके अनुसार नाटिका वृत्त अर्थात कथानक कवि कल्पित होते हैं। इसमें स्त्री पात्र ही विशेष रूप से चित्रित किए जाते हैं। कथानक अंकों में विभाजित रहता है। शेष नाटिका के संपूर्ण लक्षण सिंगभूपाल, शारदातनय, रामचंद्र, गुणचंद्र, सागरनंदी इत्यादि आलंकारिकों के समान है।

इस प्रकार भरत से लेकर विश्वनाथ तक लगभग सभी आलंकारिकों ने नाटिका पर समग्र रूप से विचार किया है। आरंभ में भरत ने नाटिका के संबंध में जो कुछ बताया उसी को परवर्ती आचार्यों ने पल्लवित एवं पुष्पित किया है। इन आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता है। संस्कृत साहित्य में प्रचलित नाटिका के सिद्धांत एवं प्रयोग की परंपरा का पालन हिंदी आलंकारिकों ने भी किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखित चंद्रावली नाटिका संस्कृत नाटिका के अनुकरण पर ही लिखी गई है। उन संपूर्ण विशेषताओं का समावेश चंद्रावली नाटिका में पाया जाता है, जिनका उल्लेख प्राचीन आचार्यों ने नाटिका के लक्षण निरूपण के क्रम में किया है।

निष्कर्ष

किसी भी नाटक या नाटिका का अन्त भरतवाक्य से होता है। नाटक के अंत में अभिनय की समाप्ति होने पर आशीर्वादात्मक श्लोक के रूप में पद्य का गान किया जाता है। इस अर्थ के अनुसार नाटक के अभिनेता अथवा पुरोहित दर्शकों को आशीर्वाद देते हैं। इस आशीर्वाद में मंगल कामना होती है। आज भी हमारे समाज में पूजा पाठ के उपरांत जनकल्याण हेतु पुरोहितों द्वारा देवपूजन एवं आरती के पश्चात् जो आशीर्वादात्मक पद्य के रूप में मंगल कामना की जाती है वह सब तत्कालीन समाज एवं रीति की ही देन है। नाटिका में अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है कि राजा अपनी नायिका का विशेष मान, सम्मान एवं आदर करता था। सभ्य शिक्षित एवं उच्च वर्ग में नारियों को विशेष प्रतिष्ठा मिलती थी। मनुस्मृति में भी लिखा है ---

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

www.ignited.in

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया।।

आज भी हमारे समाज में शिक्षित वर्ग में नारियों को विशेष सम्मान प्रदान किया जाता है। नारियों को सम्मान मिलना, उच्चाशय होना तथा मर्यादा का पालन करना समाज को सुव्यवस्थित रखने की पहली शर्त है। आज भी हम अपने समाज में हम देखते हैं कि नारी को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखने वाला घर या समाज उलझन पूर्ण विसंगतियों का केंद्र बन जाता है। हमसब यह अनुभव करते हैं कि अलौकिक सुख एवं समृधि घर की नायिका एवं नायक दोनों के समिल्लित प्रयास का फल है।

संदर्भ ग्रंथसूची, सहायक पुस्तकों की सूची

सहगल, मीना रामचंद्र - गुणचंद्र विरचित नाट्यदर्पण का अध्ययन दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, १९७८

सागरनंदी नाटकलक्षणरत्नकोष (सं॰ - बाबूलाल शुक्ल शास्त्री) चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी १९९९

प्रमिला, कुमारी – संस्कृत नाटिकाओं का नाट्यशाश्त्रीय अध्ययन, संजय प्रकाशन, दिल्ली, २००६

त्यागी, अर्चना – नाट्यशास्त्रीय वस्तु विवेचन, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, १९९४

घोष, मनमोहन – भरत का नाट्यशास्त्र, ग्रंथालय प्रा॰ लि॰ कलकत्ता, १९६७

सिंह, अयोध्या प्रसाद – संस्कृत नाट्यसंग्रह मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९८६

चक्रवाल, इंद्र – उपरूपकों का उद्भव एवं विकास विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८६

धनंजय – दशरूपकम् (संपादक डॉ॰ वैजनाथ पाण्डेय) मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९७९

सिन्हा, जयश्री – संस्कृत नाटिका विमर्श कैपिटल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८६

महफूज़, सलमा – संस्कृत नाटकों में नायक नई कॉलोनी, फैजाबाद, १९८८

शर्मा, श्यामवशिष्ठ – संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक देवनगर प्रकाशन, जयपुर, १९७५

उपाध्याय, बलदेव – संस्कृत साहित्य का इतिहास शारदा संस्थान, वाराणसी, १९७५

उपाध्याय, रामजी – मध्यकालीन संस्कृत नाटक, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, १९७४

दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ – भरत एवं भारतीय नाट्यकला, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७०

चक्रवाल, इंद्रा – भारतीय नाट्यपरंपरा और अभिनयदर्पण, चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, दिल्ली, १९८९

Corresponding Author

Dr. Kumari Pramila*

Flat No. 606/F, Mundeshwari Enclave, Khajpura, Patna-14, Bihar

www.ignited.in